राजाराम भादू

द्विमासिक 'संस्कृति मीमांसा' के संपादक,
स्वयंसेवी संगठन 'सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च' के कार्यकारी निदेशक (मानद)।

शिक्षा पर दो अच्छी किताबें

I

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी में मौलिक पुस्तकों का अभाव सर्वविदित है। इस रिक्तता को पूरा करने की दिशा में कोई सुनियोजित उपक्रम भी दिखाई नहीं देता। शिक्षा भी इसी संकट का हिस्सा है। हालांकि पिछले दशकों में शैक्षिक विमर्श में विचारोत्तेजना और उद्वेलन को लक्षित किया जा सकता है। फिर भी हम इसे व्यवस्थित लेखन में रूपायित होते हुए नहीं देख रहे हैं। शिक्षा पर गंभीर चिन्तन और विश्लेषण हिन्दी में अभी भी अनूदित होकर ही आ रहा है। मौलिक शैक्षिक सृजन के लिए प्रेरणाएं और प्रकाशन सक्रिय नहीं है।

ऐसी स्थिति में नई उद्भावनाओं वाली जो भी पुस्तकें शिक्षा के संदर्भ से सामने आती हैं, उनके प्रति हमारा रुख उत्साही होना चाहिए। यहां हम दो अच्छी किताबों का स्वागत कर रहे हैं।

कवि और चिन्तक नंदकिशोर आचार्य शिक्षा को संस्कृति की परिधि में देखते हैं जो उचित ही है। शिक्षा संस्कृति की निर्मिति करती है तो इसे अगली पीढ़ी तक संतरित भी करती है। चूंकि यह एक प्रक्रिया है, इसलिए यदि यह खराब तरह घटित होती है तो उसके नतीजे नकारात्मक हो सकते हैं। 'शिक्षा का सत्याग्रह' पुस्तक मुख्यतः इसी प्रक्रिया की पड़ताल करती है। यह आचार्य जी द्वारा समय-समय पर लिखे लेखों का संकलन है। निश्चय ही कुछ लेख उस समय किसी विशेष प्रसंग को संबोधित करते हुए लिखे गए हैं लेकिन अपने विश्लेषण की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के चलते ये पुराने नहीं पडे हैं। लेखों का फलक बहुत विस्तृत है जो शिक्षा के लगभग सभी आयामों को विमर्श के दायरे में ले आते हैं। इनमें शिक्षा की सूक्ष्म अन्तर्वस्तु को विवेचना का लक्ष्य बनाया गया है।

आचार्य मानते हैं; चूंकि शिक्षा की प्रक्रिया मूलतः एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है इसलिए उसका उद्देश्य संस्कृति का नैरन्तर्य और उसका परिष्करण एवं परिवर्द्धन है। इस संदर्भ में उनका कहना है कि

शिक्षा की वही प्रक्रिया सही और सार्थक मानी जा सकती है जो मानवीय सृजनात्मकता के विकास में सहायक हो। यहां ध्यान रखना जरूरी है कि सृजनशीलता सिर्फ ललित कलाओं या साहित्य-रचना की प्रतिभा के संदर्भ में नहीं व्यक्त होती बल्कि अन्वेषण भी सृजनात्मकता से ही अनुस्यूत होता है। आचार्य जी सृजनशीलता के लिए अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य और मूल्य-चेतना को बुनियादी शर्त मानते हैं। जाहिर है कि अनुकूलन और नियंत्रण तब शिक्षा की प्रक्रिया में अवरोधक होंगे। उनका मानना है कि यदि शिक्षा व्यक्ति में एक प्रवृत्ति के रूप में अनुकूलन और नियंत्रण की भावना का विकास करती है तो निश्चय ही सारे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को देने वाली होने पर भी उसे मानवीय सृजनशीलता के विकास को कुंठित करने वाली ही मानना होगा। इसलिए शिक्षा-प्रक्रिया का बुनियादी प्रयोजन यही हो सकता है कि वह व्यक्ति की-शिक्षार्थी की-अन्तर्निहित सृजनशीलता को अभिव्यक्त होने की प्रेरणा दे और इसके लिए आवश्यक गुणों का व्यक्ति में मानसिक और व्यावहारिक स्तर पर विकास करे।

लेखक : नन्दकिशोर आचार्य
प्रकाशक : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
मूल्य : 175 रुपए, पृष्ठ-143 (सजिल्द)

नंदकिशोर आचार्य गांधीवादी चिंतक हैं। गांधीजी के जीवन दर्शन को शिक्षा में समाविष्ट करते हुए वे कई नई अवधारणाएं प्रस्तुत करते हैं। वैसे तो गांधीवादी मूल्य दृष्टि और अहिंसक चेतना इस पुस्तक के सभी लेखों में अन्तर्निहित है। एक उदाहरण के रूप में 'शिक्षा में सत्याग्रह' लेख, जिस पर कि इस पुस्तक का शीर्षक भी है, का यह अंश देखें, 'शिक्षा की वास्तविक सार्थकता इसमें है कि वह न केवल शिक्षार्थी के मूल्यबोध और उसके अनुकूल आचरण करने की प्रवृत्ति को पुष्ट करे, बल्कि अन्याय और असत्य के विरुद्ध असहयोग और संघर्ष की प्रवृत्ति का विकास भी करे। अन्याय और असत्य से सक्रिय असहयोग और उनके विरुद्ध अहिंसक संघर्ष ही व्यक्ति के नैतिक आचरण की वास्तविक कसौटी है।'

शिक्षा के प्रयोजन और उद्देश्यों को लेकर वैचारिक अन्तर्विरोध और भिन्नता के मूल में आचार्य पूर्वग्रहों और मान्यताओं को कारण मानते हैं। शिक्षा के माध्यम से हम अधिकांशतः इन्हें नई पीढ़ी तक संप्रेषित करना चाह रहे होते हैं और यही आग्रह शिक्षा के प्रयोजन के प्रश्न पर मतैक्य नहीं होने देते, क्योंकि कई मामलों में हमारी मान्यताएं एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं और कई दफा तो वे बिल्कुल विपरीत ध्रुवों पर स्थित होती हैं। मूल्यों को लेकर हमारे अपने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अन्तर्विरोधों के संदर्भ में आचार्य बर्ट्रेंड रसेल को उद्धृत करते हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है कि अधिकांश बच्चे अनजाने ही अपने माता-पिता और अध्यापकों के असली विचारों को ग्रहण कर लेते हैं, लेकिन, आमतौर पर वे उनकी उन धारणाओं को ग्रहण नहीं करते जिनका वे प्रचार तो करते हैं, पर वास्तव में जो उनकी सच्ची धारणाएं नहीं होतीं। नए संदर्भ में आचार्य के अनुसार माता-पिता और अध्यापक का स्थान सामाजिक वातावरण लेता जा रहा है, अतः यह स्पष्ट है कि समाज द्वारा औपचारिक रूप से घोषित विचारों के बजाय समाज का वास्तविक आचरण शिक्षा की प्रक्रिया में केन्द्रीय महत्त्व प्राप्त कर लेता है।

मौजूदा शिक्षा के पाठ्यक्रम पर आचार्य द्वारा उठाये गए प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। क्या आधुनिक मानसिकता की प्रवृत्तियों-विवेक और अनुभव-का, इस तरह के आधुनिक विचारों का प्रतिफलन हमारे पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रिया में दिखाई देता है ? क्या हमारी शिक्षा मनुष्य की स्वतंत्र विवेक-शक्ति को पुष्ट करती, सामाजिक बराबरी को- जिसमें स्त्री-पुरुषों की बराबरी भी शामिल है- प्रोत्साहन देती और अहिंसा की मानसिकता का विकास करती है ? हमारे पाठ्यक्रम में मनुष्य को मनुष्य की तरह देखा जाता है या हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई अथवा भारतीय, रूसी, पाकिस्तानी, चीनी, अमरीकी या गोरे-काले के रुप में ? क्या पाठ्यक्रम और शिक्षण-विधि विद्यार्थी के अपने विवेक को महत्त्व देते हैं या उस पर अन्यत्र किये गए निर्णयों को थोप देते हैं ? अनुशासन को स्वतंत्र-चेतना की आन्तरिक सहज प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है या किसी-न-किसी प्रकार की सत्ता के प्रति असंशय आत्मसमर्पण में ही उसे देखा जाता हैं ? इन प्रश्नों के आधार पर मौजूदा पाठ्यक्रम की स्थिति का आंकलन हम स्वयं कर सकते हैं। इस आंकलन से हम आचार्य के निष्कर्ष को जोडकर देखें; 'यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे पाठ्यक्रम सामान्यीकरण की प्रक्रिया है। उनमें शिक्षार्थी की अपनी विशिष्टता की तलाश नहीं है। समता और सामान्यीकरण दो भिन्न बातें हैं, इसको समझ लेना आवश्यक है। जब तक हम विशिष्टता पर आधारित समता के बजाय सामान्यीकरण की प्रवृत्ति पर जोर देते रहेंगे, तब तक हम शिक्षार्थी आधारित आधुनिक पाठ्यक्रम का विकास नहीं कर सकेंगे।'

मानवीय अस्तित्व को वैयक्तिक स्वातंत्र्य से जोड़ते हुए आचार्य रघुवीर सहाय की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं-

स्वाधीन एक देश में

लोग डरते हैं
स्वाधीन एक व्यक्ति से।

आस्तित्व के प्रश्न पर विचार करते हुए आचार्य उल्लेख करते हैं, सार्त्र के अदर इज हेल के बरअक्स जब अजेय ने अदर इज फ्रीडम को एक सूत्र वाक्य की तरह रखा था तो उनका आशय यही था कि मेरी स्वाधीनता और सबकी स्वाधीनता भिन्न नहीं है। आचार्य के अनुसार, शिक्षा की केन्द्रीय विषयवस्तु स्वतंत्रता ही हो सकती है-व्यक्तियों की स्वतंत्रता और समाज की स्वतंत्रता दोनों ही- और शिक्षा-प्रक्रियाओं तथा संस्थानों का उद्देश्य न केवल अपने माध्यम से बच्चे में स्वतंत्रता के बोध का विकास बल्कि स्वतंत्रता पर होने वाले आघातों की समझ और उनसे अपने को स्वतंत्र रख सकने की प्रक्रियाओं का प्रशिक्षण हो सकता है।

आचार्य ठीक ही कहते हैं कि हममें से अधिकतर लोगों को ये जानकारी नहीं है कि मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र में शिक्षा का अधिकार एक बुनियादी अधिकार माना गया है। शिक्षाधिकार संबंधी छब्बीसवें अनुच्छेद का यहां उल्लेख भी समीक्षीन होगा-

1. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक और बुनियादी स्तरों तक, निःशुल्क होगी। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य रहेगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सामान्यतः सभी को उपलब्ध करवाई जाएगी और उच्च शिक्षा योग्यता के आधार पर सभी के लिए समान रुप से उपलब्ध होगी।

2. शिक्षा का लक्ष्य मानवीय व्यक्तित्व का समग्र विकास और मानव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करना होगा। यह सभी राष्ट्रों, जातियों और धार्मिक समूहों में पारस्परिक समझ, सहिष्णुता और मैत्री के विकास का आधार होगा तथा यह शांति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों को आगे बढ़ाएगा।

3. अपने बच्चों के लिए शिक्षा प्रक्रिया के चयन में माता-पिता के अधिकार को प्राथमिकता मिलेगी। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञा पत्र (convenant) में भी इसी से मिलती-जुलती शब्दावली में (अनुच्छेद 13) शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को एक बुनियादी अधिकार माना गया है।

भारत सरकार ने इस चार्टर को स्वीकार किया हुआ है लेकिन शिक्षा को अधिकार का दर्जा कहीं अब जाकर दिया है। हम देख सकते हैं कि छह से चौदह वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा कानून 2009 की सीमाएं मानव अधिकारों के सर्वाजनिक घोषणा पत्र की भावना की संगति में किस तरह उजागर हो जाती हैं। इस संबंध में आचार्य की यह मान्यता बहुत प्रासंगिक है कि शिक्षा ज्ञान के प्रसार की प्रक्रिया है, इसलिए ज्ञान को गुप्त रखने और उसे जटिल बनाने के प्रयत्नों को भी शिक्षा प्राप्त करने के बुनियादी अधिकार का विरोध करना ही कहा जाएगा। ज्ञान समग्र मानवीय चेतना की सम्पत्ति है, अतः उसे कोई भी व्यक्ति, वर्ण या राष्ट्र भी निजी सम्पत्ति की तरह सिर्फ अपने तक सीमित नहीं रख सकता।

जैसाकि आरंभ में कहा गया, पुस्तक में संकलित लेखों की विषयवस्तु काफी विस्तृत है। इन्हें परस्पर जोड़ने वाला तन्तु आचार्य की वह दृष्टि है जो सर्वत्र परिलक्षित होती है। पुस्तक में शिक्षा दर्शन पर कई दार्शनिकों और शिक्षाविदों के विचारों का भी आचार्य जी ने विश्लेषण किया है। इनमें गांधी के साथ गिजूभाई और लोहिया हैं तो आचार्य नरेन्द्र देव और सम्पूर्णानंद भी। कहीं कार्ल मार्क्स और एम. एन. राय की धारणाओं का विवेचन है तो तोलस्तोय, इवान इलिच, मार्टिन बूबर और जे. कृष्णमूर्ति विमर्श में आए हैं। लेकिन रमेश थानवी ने ठीक लिखा है, 'पुस्तक इन चिंतकों को परोसती नहीं है बल्कि उनको साथ लेते हुए नए संदर्भों में हमें शैक्षिक मुद्दों का विवेचन सिखाती है।' पुस्तक के आखिर में आचार्य से दो साक्षात्कार संकलित हैं जिनमें उनसे शिक्षा के समकालीन सवालों पर चर्चा की गयी है। इनमें से एक का शीर्षक है- शिक्षा (माने) प्रश्नाकुल मस्तिष्क का विकास।

II

दूसरी पुस्तक 'मरीया मोन्तेस्सोरी- जीवनी एवं शिक्षा दर्शन' संजीव मिश्र ने लिखी है। संजीव ने इसे एक योजना बनाकर लिखा है। यह दुखद है कि ये उनके जीवन काल में सामने नहीं आ पाई। इसे संपादित करके सामने लाए- शिक्षाविद् रमेश थानवी। संजीव मिश्र मूलतः कवि थे, पेशे के रूप में पत्रकारिता की किन्तु उनका मन शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में ही रमता था। उन्होंने यह कार्य पुस्तक के प्रकाशक मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति, राजदलेसर के आग्रह पर किया है। पुस्तक के अंदर के पृष्ठ पर ठीक ही लिखा है, 'मरीया मोन्तेस्सोरी का नाम बहुत सारे लोग जानते हैं, उनके नाम की स्कूलें भी हर गली-कूचे में दिखाई दे जाती हैं मगर उनके जीवन और दर्शन पर हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक आज तक उपलब्ध नहीं थी जो पठनीय और मननीय हो।' यही इस पुस्तक का संदर्भ है।

राजस्थान में नागरिक समाज की ओर से साक्षरता और शिक्षा पर काफी नवाचारी काम हुए हैं। लेकिन शिशु शिक्षा पर यहां महत्त्वपूर्ण पहल राजदलेसर (चुरू) से ही हुई है। साठ-सत्तर साल पहले तक शेखावाटी के एक सामान्य गांव से बना यह कस्बा अभिनव बाल भारती और मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति के कारण जाना जाता है। इन संस्थाओं ने शिशुओं की शिक्षा में तो अभिनव प्रयोग किए हैं, साथ ही इन्होंने हिन्दी के हजारों पाठकों को गिजुभाई के काम से परिचित कराया है। इनके द्वारा गिजुभाई बधेका के सम्पूर्ण बाल

शिक्षा दर्शन की 17 पुस्तकों का सस्ता, सादगीपूर्ण और सुन्दर प्रकाशन किया गया है।

जैसा कि पुस्तक के शीर्षक से ही जाहिर है, इसमें मरिया मोन्तेस्सोरी का जीवन और दर्शन विवेचित है। पुस्तक में कुल छह अध्याय हैं जिनमें से तीन आरंभिक अध्याय- संघर्ष, प्रेरणा और अवसर- मरिया के आरंभिक जीवन संघर्ष तथा एक प्रयोगशील चिंतक के रुप में इनके व्यक्तित्व निर्माण पर केन्द्रित हैं। बाकी तीन अध्याय उनके शिक्षा दर्शन की मान्यता, अनुप्रयोग और विस्तार से संबद्ध हैं।

लेखक : संजीव मिश्र
प्रकाशक : मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर, चूरू (राज.)
मूल्य : 150 रुपए, पृष्ठ-68 (सजिल्द)

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में इटली तो क्या, शायद पूरे यूरोप में किसी ने किसी औरत के डॉक्टर होने की कल्पना भी नहीं की थी। औरतों का काम था घर संभालना। आधुनिक युग की शुरुआत में, बहुत हुआ तो औरतों को अध्यापन का पेशा अपनाने की छूट मिली। माना जाता था कि बच्चों को सिखाना औरत का नैसर्गिक गुण है। लेकिन औरत डॉक्टर ? यह तो किसी भी तरह स्वीकार करने लायक बात नहीं थी। यहां तक कि मरिया के मां-बाप भी उसके मेडिकल में जाने को लेकर खुश नहीं थे। बल्कि उसके कर्नल पिता तो इस बात पर उनसे नाराज हो गए। मरिया कॉलेज में एक अकेली लड़की के रूप में कैसे संघर्ष करती थी, यह चित्रण संजीव ने इस प्रकार किया है ; 'अंधेरा घिर रहा था। उस विशाल इमारत में कोई नहीं था। कमरे-बरामदे सूने पड़े थे। बस, एक बड़े-से हॉल में धीमी-पीली रोशनी फैली थी। हॉल में इधर-उधर लम्बी-ठंडी लोहे की ट्रॉलियों पर लाशें पड़ी थीं। एक अकेली लड़की, कोई बाईस साल की, नश्तर लिए धीमे-धीमे एक लाश की चीर-फाड़ कर रही थी। उसके भीतर झांकती, शरीर की बनावट को ध्यान से समझती, एक कॉपी में नोट्स ले रही थी। उसकी आंखों में रह-रहकर आसूं उमड़ रहे थे। दुख के नहीं। न ही भय के बल्कि क्रोध और निराशा के।··· मेडिकल कॉलेज के छात्र दिन में शवों की चीर-फाड़ करके शरीर का अध्ययन करते। भरी-पूरी कक्षा में। प्रोफेसर के कुशल निर्देशन में। लेकिन मरीया को इसकी इजाजत नहीं थी। क्योंकि वह लड़की थीं।'

अपने आरंभिक दिनों से ही यूरोप में उभरते नारीवाद (फेमिनिज्म) से जुड़ी मरिया मोन्तेस्सोरी ने अपने संघर्ष के दिनों को याद करते हुए कहा था, 'मुझे लगता था कि मैं जो चाहूं सो कर सकती हूं। कुछ भी असंभव नहीं है।' 31 अगस्त, 1870 के दिन जन्मी मरिया मोन्तेस्सोरी ने 1896 में रोम के विश्वविद्यालय से चिकित्सा विज्ञान में डॉक्टर की उपाधि ग्रहण की। इसी वर्ष बर्लिन में आयोजित फेमिनिस्ट कांग्रेस में इटली की महिलाओं के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया। वहां पर औरतों के काम करने को लेकर उनका भाषण इतना प्रभावशाली था कि यूरोप के कई अखबारों ने उसे फोटो के साथ प्रमुखता से प्रकाशित किया। चार साल बाद लंदन में ऐसी ही एक कांग्रेस में मरीया ने अपने व्याख्यान में सिसली की खदानों में बाल श्रमिकों की प्रथा पर तीखे प्रहार किए और रानी विक्टोरिया के संरक्षण में चल रहे बाल श्रम विरोधी अभियान का समर्थन किया।

पढ़ाई पूरी करने के बाद मरीया मोन्तेस्सोरी ने रोम के साइकिएट्रिक क्लिनिक में काम करना शुरू किया। उनके काम में शामिल था रोम के मनोरोगी केन्द्र से ऐसे मरीजों को छांटना जिनका अध्ययन किया जा सके। मनोरोगियों को उस समय पागल समझा जाता था। एक मार्मिक घटनाक्रम में मरिया का ध्यान विमंदित बच्चों की ओर गया। ये भी औरों के लिए पागल ही थे लेकिन इनके गहन अध्ययन से मरीया ने पाया कि विमंदित बच्चों की समस्या चिकित्साशास्त्रीय नहीं बल्कि सीखने की समस्या है। उनकी यह धारणा बनने लगी कि सिखाने की विशेष विधियां अपनाकर विमंदित बच्चों के हालात में महत्त्वपूर्ण बदलाव लाए जा सकते हैं। लगभग ऐसी ही कुछ मान्यता उन दिनों फ्रांसीसी डॉक्टर ज्यां इटाई और एदुआर्द सेंग्बे ने भी व्यक्त की थी। मरिया ने इन दोनों के शोध का अध्ययन किया और विमांदित बच्चों के साथ काम करते हुए उनके लिए एक खास शिक्षण-पद्धति विकसित की। इन अनुभवों को उन्होंने अपनी पुस्तक 'द केयर एंड एज्युकेशन ऑफ द चाइल्ड ऑव ऐवेरोन' में विस्तार से लिखा है।

1906 तक के जीवन में मरीया मोन्तेस्सोरी के जीवन की दो प्रमुख उपलब्धियां थीं- इटली की पहली महिला चिकित्सक होना और विमंदित बच्चों के उपचार की चर्चित पद्धति का विकास। अगले दो साल में उन्होंने अपनी अद्भुत और महान खोज- मोन्तेस्सोरी शिक्षण पद्धति का विकास किया। मरीया की यह खोज मानव मस्तिष्क के आन्तरिक स्वभाव और विकास के बारे में थी। वास्तव में उनका महत्त्व मस्तिष्क के विकास की विधि की खोज करने में है न कि उस पद्धति के विकास में जिसे शिक्षण की मोन्तेस्सोरी पद्धति कहा जाता है। स्वयं मरीया ने लिखा है, यह मानना गलत होगा कि केवल बच्चों को ध्यान से देखने भर से हमें उनके छिपे हुए स्वभाव की जानकारी हो गई और उसके आधार पर विशेष स्कूल

और शिक्षण पद्धति का विकास कर लिया गया। जो बात पता न हो, उसे देख पाना भी संभव नहीं है। कोई भी केवल अन्तर्प्रेरणा से यह कल्पना नहीं कर सकता कि बच्चे की दो प्रवृत्तियां (सामान्य और असामान्य) होती हैं, और न ही उन्हें प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकता है। कोई भी नई चीज अपनी खुद की ऊर्जा के बल पर सामने आती है । वह उभरती है और महज संयोग से ही दिमाग पर छा जाती है।

मरीया मोन्तेस्सोरी ने अपना शैक्षिक प्रयोग रोम की एक हाउसिंग सोसाइटी के गरीब बच्चों के साथ शुरू किया था। संजीव मिश्र की भाषा में इस स्कूल में 'थे साठ डरे हुए बच्चे, आसुंओं से भरी आंखें, भर्राए गले, भावहीन चेहरे, विस्फारित घबराई नजरें। बच्चे, जिन पर कोई ध्यान नहीं देता था। जो अंधेरी जर्जर झुग्गियों में जन्मे थे, जहां कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके मस्तिष्क को उत्प्रेरित करे। वे कुपोषित थे, ताजा हवा और सूरज की पर्याप्त रोशनी से वंचित। वे अनखिले फूलों की तरह थे जिनमें कलियों की ताजगी नहीं थी। उनकी आत्मा वैरागियों की तरह अंधेरी खोह में कैद थी।

6 जनवरी, 1906 से इन बच्चों के साथ काम करते हुए मरीया ने यह मूलभूत खोज की कि, बच्चे के असामान्य व्यवहार के पीछे बचपन की एक सामान्य प्रवृत्ति छिपी होती है। बच्चे में जो गुण और क्षमताएं समझी जाती हैं, उनसे कहीं अधिक और ऊंची प्रवृत्ति एक बच्चे में मौजूद रहती हैं। मानो व्यक्तित्व का एक श्रेष्ठतर पक्ष हर बच्चे के भीतर जन्म लेने को तैयार रहता है। ◆

संपर्क

समान्तर, 71/17, श्योपुर रोड, प्रताप नगर, सांगानेर,
जयपुर-302033 राजस्थान

मोन्तेस्सोरी स्कूल

एक आदर्श मोन्तेस्सोरी स्कूल का परिवेश ऐसा होता है कि वहां बच्चा अपने चारों ओर ऐसी सामग्री पाता है जिससे उसके संवेदनशील काल की प्रवृत्तियां तुष्ट हो सकें। वहां अध्यापक उस सामग्री के प्रयोग में बच्चों का सहायक होता है। वह सिखाता नहीं, बल्कि 'सीखने में साथ देता' है। अध्यापक ऐसी स्वाभाविक गतिविधियां या 'खेल' करवाता रहता है जिनके जरिये बच्चा अपने संवेदनशील काल के अनुरूप सक्रिय रहे और नई-नई चीजें खुद ही सीखता चला जाए। मोन्तेस्सोरी स्कूल में एक जानकार वयस्क के रूप में शिक्षक नहीं, बल्कि सीखने को प्रवृत्त बच्चा सारी गतिविधि के केन्द्र में होता है।

ऐसे स्कूल का नक्शा, फर्नीचर, शिक्षण-सामग्री आदि से लेकर दीवारों का रंग, ब्लैक बोर्ड की ऊंचाई, टॉयलेट में कमोड और वाशबेसिन के आकार और ऊंचाई, झूले, खिड़की-दरवाजे आदि सब-कुछ ऐसे होते हैं कि छोटा बच्चा बिना बड़ों की मदद के उनका उपयोग कर सके और खुद को या किसी और बच्चे को अनजाने में चोट न पहुंचाए। बच्चा स्कूल के कमरों या कॉरिडोर आदि में भटके नहीं और माहौल में आसानी से घुल-मिल सके।

स्कूल में पाठ्यक्रम और शिक्षक का तैयार किया हुआ कार्यक्रम ज्यों-का-त्यों लागू नहीं होता, बल्कि हर बच्चे के विकास पर नजर रखी जा सकती है जहां एक बच्चा कुछ कर रहा है तो दूसरा कुछ और। पर एक कुशल प्रशिक्षित मोन्तेस्सोरी शिक्षक हर बच्चे के विकास पर नजर रखते हुए मानो नेपथ्य से, परोक्ष रूप में, पूरे समूह की गतिविधियों को नियंत्रित दिशा देता रहता है।

बच्चे को किताबों से लगभग नहीं के बराबर पढ़ाया जाता है। जैसे त्रिकोण-गोल-चौकोर आदि आकार किताब में बनी आकृतियों से नहीं, बल्कि लकड़ी या प्लास्टिक के टुकड़ों से और रोजमर्रा की वस्तुओं के जरिये समझाए जाते हैं। बच्चा जानता है कि घड़ी और सिक्का गोल हैं, रूमाल चौकोर और समोसा तिकोना आदि। इसी प्रकार बच्चा रंग, स्पर्श-भेद (चिकना, खुरदरा आदि), दूरी और विस्तार (दूर-पास आदि), समय (पहले, बाद, जल्दी, देर), आकार (बड़ा, छोटा) आदि भी चित्रों या किताबों से नहीं, वास्तविक अनुभव से सीखता है। 'क' की ध्वनि सीखने और पहचानने से पहले बच्चा इस आकृति को कबूतर, कटहल, कागज आदि अनेक वस्तुओं से संबद्ध करना सीख जाता है और तब 'क' की ध्वनि और अक्षर के आकार का संबंध उसके लिए एक सायास सीखी हुई नहीं, बल्कि स्वाभाविक वस्तु हो जाती है।

(समीक्षित पुस्तक से एक अंश)